

श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध अध्याय 18: राजा ययाति

30 September 2026



असमय वृद्धावस्था के शाप से ग्रस्त, राजा ययाति अपने सबसे छोटे एवं सबसे भक्त पुत्र पूरु से यौवन का उपहार पाते हैं — जबकि पूरु, शुद्ध प्रेम से, स्वेच्छा से अपने पिता की वृद्धावस्था अपने ऊपर ले लेते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवत विज्ञप्ति में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं एवं शिक्षाओं की एक श्रद्धापूर्ण यात्रा। नवम स्कन्ध का यह अठारहवाँ अध्याय चन्द्रवंश के नहुष-पुत्र राजा ययाति की प्रसिद्ध कथा कहता है। शुकदेव राजा परीक्षित को बताते हैं कि किस प्रकार ययाति ने ऋषि शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी एवं असुरराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से विवाह किया; किस प्रकार, शुक्राचार्य द्वारा असमय वृद्धावस्था के शाप से ग्रस्त, ययाति ने अपनी वृद्धावस्था को अपने किसी पुत्र के यौवन से बदलना चाहा; किस प्रकार उनके चार बड़े पुत्रों ने इनकार कर दिया, जबकि सबसे छोटे पूरु ने बिना कुछ माँगे उसी क्षण पिता की वृद्धावस्था अपना ली। यह अध्याय अभिमान एवं उसके परिणामों, अतृप्त कामना के खिंचाव, और सबसे बढ़कर एक पुत्र के निःस्वार्थ प्रेम की सुन्दरता के विषय में है — एक ऐसा प्रेम जो देने में ही अपनी पूर्णता पाता है।

अध्याय-परिचय

- ग्रन्थ: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 9 (नवम स्कन्ध)
- अध्याय: 18 (अष्टादश अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: राजा ययाति का पुनः यौवन प्राप्त करना
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए — सम्पूर्ण कथा सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में शौनक ऋषि एवं ऋषि-समुदाय को सुनाई गई
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: चन्द्रवंश में ययाति का राज्य; असुरराज वृषपर्वा का उद्यान एवं नगर
- केन्द्रीय विषय: राजा ययाति का देवयानी एवं शर्मिष्ठा से विवाह, असमय वृद्धावस्था का शाप, और उस वृद्धावस्था को स्वीकार करने वाले पुत्र पूरु की भक्ति
- मुख्य श्लोक-परास: नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 1-51
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

नहुष के पुत्र

शुकदेव ने ययाति का वृत्तान्त आरम्भ किया। नहुष के छह पुत्र थे — यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति, और कृति। सबसे बड़े यति ने अपने पिता द्वारा प्रस्तुत राज्य को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वे उसका अन्त जानते थे: वह अवस्था जिसमें प्रवेश करके कोई आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाता।

राज्यं नैच्छद् यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ।
यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥

rājyaṁ naicchad yatiḥ pitrā dattaṁ tat-pariṇāmaṁ vit yatra praviṣṭaḥ puruṣa ātmānaṁ nāvabudhyate

अर्थ: यति ने अपने पिता द्वारा प्रस्तुत राज्य की इच्छा नहीं की, उसका अन्त जानते हुए — कि उसमें लीन व्यक्ति आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाता। (नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 2)

जब नहुष अपनी धृष्टता के कारण ब्राह्मणों के शाप से स्वर्ग से गिराकर अजगर बना दिए गए, तब ययाति राजा बने, अपने छोटे भाइयों को चारों दिशाओं का शासक नियुक्त करते हुए। तब राजा परीक्षित ने पूछा कि किस प्रकार एक क्षत्रिय राजा ने एक ब्राह्मण की पुत्री से विवाह किया।

सरोवर पर कलह

शुकदेव ने बताया। असुरराज वृषपर्वा की अभिमानी पुत्री शर्मिष्ठा, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी एवं एक हज़ार सखियों के साथ नगर-उद्यान में विचरण कर रही थी। कमल-सरोवर में स्नान करते समय, कन्याओं ने अपने वस्त्र तट पर छोड़ दिए; और भगवान् शिव को पार्वती सहित वहाँ से जाते देखकर, वे शीघ्रता से बाहर निकलकर वस्त्र पहनने लगीं। शर्मिष्ठा ने अनजाने में देवयानी का वस्त्र पहन लिया, और देवयानी ने क्रुद्ध होकर

उसे कठोरता से फटकारा।

अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसाम्प्रतम् ।

अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११ ॥

*aho nirikṣyatām asyā dāsyāḥ karma hy asāmpratam asmad-dhāryam dhṛtavatī śunīva havir
adhvare*

अर्थ: “अहो, इस दासी का अनुचित कर्म तो देखो! यज्ञ में हविष्य छीनती कुतिया के समान, इसने वह वस्त्र पहन लिया जो हमारे पहनने के लिए था।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 11)

इन शब्दों से आहत होकर, शर्मिष्ठा ने भी कठोर उत्तर दिया, और अपने क्रोध में देवयानी के वस्त्र छीनकर उसे एक कुँए में फेंककर घर चली गई।



उद्यान-सरोवर में स्नान के पश्चात्, अभिमानी शर्मिष्ठा अनजाने में शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का वस्त्र पहन लेती है, और दोनों युवतियों के बीच एक कटु कलह छिड़ जाती है (श्लोक 6-17)।

ययाति देवयानी को कुँए से निकालते हैं

आखेट की खोज में विचरण करते हुए एवं जल के लिए कुँए पर आकर, राजा ययाति ने देवयानी को उसके भीतर देखा। दयालु होकर, उन्होंने उसे अपना ही उत्तरीय वस्त्र दिया और, उसका हाथ पकड़कर, उसे बाहर निकाला।

दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ।

गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥

dattvā svam uttaram vāsas tasyai rājā vivāsase gr̥hītvā pāṇinā pāṇim ujjahāra dayā-parah

अर्थ: अपना ही उत्तरीय वस्त्र देकर, दयालु राजा ने, अपने हाथ से उसका हाथ पकड़कर, उस वस्त्रहीन कन्या को कुएँ से बाहर निकाला। (नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 19)

देवयानी ने घोषित किया कि चूँकि उन्होंने उसका हाथ ले लिया है, अब कोई अन्य उसका पति नहीं हो सकता, और कि यह मिलन विधाता द्वारा नियत है; एक ब्राह्मण उसका पति नहीं हो सकता, उसने कहा, एक पूर्व शाप के कारण। इस सम्बन्ध को नियत मानकर एवं अपने मन को उसकी ओर आकर्षित पाकर, ययाति सहमत हो गए।



जल के लिए कुएँ पर आकर, दयालु राजा ययाति देवयानी को उसके भीतर पाते हैं, उसे अपना उत्तरीय वस्त्र देते हैं, और उसका हाथ पकड़कर बाहर निकालते हैं — एक ऐसा मिलन जिसे वह विधाता द्वारा नियत घोषित करती है (श्लोक 18-23)।

देवयानी ने अपने पिता से शिकायत की, और शुक्राचार्य दुखी होकर असुरराज का नगर छोड़ चले। वृषपर्वा, अपने गुरु को प्रसन्न करने को उत्सुक, उनके चरणों में गिर पड़े, और देवयानी को सन्तुष्ट करने के लिए यह स्वीकार किया कि शर्मिष्ठा, अपनी एक हज़ार सखियों सहित, जहाँ भी देवयानी जाए वहाँ उसकी दासी बनकर सेवा करेगी। देवयानी को शर्मिष्ठा सहित ययाति को देते हुए, शुक्राचार्य ने राजा को चेतावनी दी कि वे कभी शर्मिष्ठा के साथ शय्या साझा न करें। देवयानी ने यदु एवं तुर्वसु को जन्म दिया; किन्तु शर्मिष्ठा ने, एक पुत्र की अभिलाषा से, गुप्त रूप से गर्भधारण के उपयुक्त समय पर ययाति से सन्तान माँगी, और राजा ने, शुक्राचार्य को दिए अपने ही वचन को भूलकर, उसे द्रुह्यु, अनु एवं पूरु प्रदान किए। जब देवयानी को इसका पता चला, वह क्रुद्ध होकर अपने पिता के पास गई, और शुक्राचार्य ने राजा को शाप दिया।

वृद्धावस्था का शाप

क्रुद्ध होकर, शुक्राचार्य ने ययाति को काम से दास एवं मिथ्यावादी बताते हुए धिक्कारा, और उन्हें विकृत करने वाली वृद्धावस्था का शाप दिया।

शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष ।

त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥

śukras tam āha kupitaḥ strī-kāmāṇṛta-pūruṣa tvām jarā viśatām manda virūpa-karaṇī nṛṇām

अर्थ: क्रुद्ध शुक्राचार्य ने उससे कहा: “हे मूढ़, स्त्रियों की कामना करने वाले एवं मिथ्या बोलने वाले पुरुष — तुझे मनुष्यों को विकृत करने वाली वृद्धावस्था घेर ले।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 36)

जब ययाति ने प्रार्थना की कि वे अभी भोग से तृप्त नहीं हुए, तब शुक्राचार्य ने अनुमति दी कि वे अपनी वृद्धावस्था को किसी इच्छुक व्यक्ति के यौवन से बदल सकते हैं।



इस बात से क्रुद्ध कि ययाति ने अपने वचन का पालन नहीं किया, ऋषि शुक्राचार्य राजा को मनुष्य को विकृत करने वाली वृद्धावस्था का शाप देते हैं — यद्यपि वे अनुमति देते हैं कि ययाति उसे किसी इच्छुक के यौवन से बदल सकते हैं (श्लोक 34-37)।

पुत्रों से पूछा जाता है

घर लौटकर, ययाति ने अपने बड़े पुत्र यदु से कहा कि वह उनकी वृद्धावस्था ले ले और बदले में अपना यौवन दे। किन्तु यदु ने इनकार कर दिया, यह कहते हुए कि वह जीवन के मध्य में वृद्धावस्था धारण नहीं करना चाहता, क्योंकि जिस मनुष्य ने भोग नहीं चखा वह कामना से मुक्त नहीं हो सकता।

श्रीयदुरुवाच

नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव ।

अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥

*śrī-yadur uvāca notsahe jarasā sthātum antarā prāptayā tava aviditvā sukhaṁ grāmyaṁ
vaitṛṣyaṁ naiti pūruṣaḥ*

अर्थ: यदु ने कहा: मैं जीवन के मध्य में वृद्धावस्था धारण करना नहीं चाहता; क्योंकि जिस मनुष्य ने भोग नहीं जाना वह कामना से मुक्ति नहीं पाता। (नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 40)

तुर्वसु, द्रुह्यु एवं अनु ने भी इसी प्रकार इनकार कर दिया, धर्म को न जानते हुए एवं क्षणभंगुर शरीर को शाश्वत समझते हुए। तब ययाति पूरु की ओर मुड़े — आयु में सबसे छोटे किन्तु गुणों में सबसे बड़े।

अपृच्छत् तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ।

न त्वमग्रजवद् वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥

*apṛcchat tanayaṁ pūruṁ vayasonaṁ guṇādhikam na tvam agrajavad vatsa mām
pratyākhyātum arhasi*

अर्थ: उन्होंने अपने पुत्र पूरु से पूछा — आयु में छोटे किन्तु गुणों में बड़े: “प्रिय पुत्र, तुम्हें अपने बड़े भाइयों के समान मुझे अस्वीकार नहीं करना चाहिए।” (नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 42)



राजा ययाति अपने चार बड़े पुत्रों — यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु एवं अनु — से अपनी वृद्धावस्था लेने को कहते हैं, किन्तु प्रत्येक बारी-बारी से इनकार कर देता है, यौवन के भोग छोड़ने को तैयार न होकर (श्लोक 38-41)।

पूरु की भक्ति

पूरु ने उत्तर दिया कि कोई मनुष्य उस पिता को कभी पूर्णतः चुका नहीं सकता जिसने उसे उसका शरीर ही दिया, जिसकी कृपा से वह परम कल्याण पा सकता है; और उन्होंने एक पुत्र के प्रेम का माप सिखाया।

श्रीपूरुवाच

को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् ।

प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद् विन्दते परम् ॥ ४३ ॥

śrī-pūrur uvāca ko nu loke manuṣyendra pitur ātma-kṛtaḥ pumān pratikartuṁ kṣamo yasya prasādād vindate param

अर्थ: पूरु ने कहा: इस संसार में कौन मनुष्य, हे राजन्, अपने पिता को, अपने शरीर के दाता को, चुका सकता है, जिसकी कृपा से वह परम गति पा सकता है? (नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 43)

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः ।

अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥ ४४ ॥

uttamaś cintitaṁ kuryāt prokta-kārī tu madhyamaḥ adhamo 'śraddhayā kuryād akartoccaritaṁ pituḥ

अर्थ: श्रेष्ठ पुत्र वह है जो पिता की इच्छा को कहे जाने से पहले ही पूर्ण कर दे; मध्यम वह जो केवल कहा हुआ करे; अधम वह जो श्रद्धाहीन होकर पिता की आज्ञा माने; और जो इनकार करे वह पिता के मल के समान है। (नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 44)

अतः पूरु ने सहर्ष अपने पिता की वृद्धावस्था अपने ऊपर ले ली, और ययाति, यौवन को पुनः प्राप्त करके, अनेक और वर्षों तक जीवन का भोग करते रहे।



भक्त सबसे छोटे पुत्र पूरु सहर्ष अपने पिता की वृद्धावस्था स्वीकार करते हैं और बदले में अपना यौवन देते हैं — वह श्रेष्ठ पुत्र, जो शुद्ध एवं श्रद्धामय प्रेम से अपने पिता की इच्छा की सेवा करता है (श्लोक 42-44)।

सहस्र वर्ष, फिर भी अतृप्त

यौवन पुनः पाकर, ययाति ने सातों द्वीपों से घिरी सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य किया, अपनी प्रजा की रक्षा एक पिता के समान करते हुए, जबकि देवयानी, मन, वचन एवं शरीर से पूर्णतः समर्पित, उन्हें एक पत्नी द्वारा दिए जा सकने वाले गहनतम सुख का अनुभव कराती रहीं। उन्होंने महान् यज्ञ किए, ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा देते हुए, उस हरि को प्रसन्न करने के लिए जो समस्त देवताओं के स्वामी एवं समस्त वेदों के सार हैं — वही वासुदेव जिनके भीतर यह सम्पूर्ण सृष्टि टिकी है और जिनमें वह लीन हो जाती है, स्वप्न के समान अवास्तविक, यद्यपि रहते समय पर्याप्त वास्तविक प्रतीत होती है। फिर भी, मन एवं पाँचों इन्द्रियों से सहस्र वर्षों तक संसार का पूर्णतम सुख भोगते हुए भी, वह सम्राट अतृप्त ही रहे।

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ।

विदधानोऽपि नातृप्यत् सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥

evam varṣa-sahasrāṇi manaḥ-ṣaṣṭhair manaḥ-sukham vidadhāno 'pi nāṭipyat sārva-bhaumam kad-indriyair

अर्थ: इस प्रकार, सहस्र वर्षों तक, सम्पूर्ण पृथ्वी के सम्राट ने मन एवं पाँचों इन्द्रियों से सुख भोगा — और फिर भी वे कभी तृप्त नहीं हुए। (नवम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 51)

यही इस अध्याय की वास्तविक शिक्षा है, और ययाति स्वयं इसका प्रमाण हैं। न सत्ता, न धन, न भोग — अपने ही पुत्र के यौवन से प्राप्त सहस्र वर्षों का भोग भी — अशुद्ध इन्द्रियों की भूख को शान्त नहीं कर सका, क्योंकि भोग तृप्ति नहीं देता, केवल भूख को तीव्र करता है। भागवत जानबूझकर इस विफलता को पूरु की सफलता के साथ रखता है: एक राजकुमार कामना को अनन्त काल तक खिलाकर जीतने का प्रयास करता है, दूसरा उसे एक ही निःस्वार्थ त्याग में, बदले में कुछ भी न चाहते हुए, जीत लेता है। ययाति का थका हुआ भोग एवं पूरु का सहज प्रेम इसी एक प्रश्न के अध्याय के दो उत्तर हैं — और उनमें से केवल एक ही वास्तव में सफल होता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. अभिमान कलह एवं शोक बोता है। सरोवर पर देवयानी एवं शर्मिष्ठा दोनों का अभिमान अपमान, आघात एवं परिणामों की एक श्रृंखला की ओर ले जाता है। जहाँ विनम्रता चंगा करती, वहाँ अभिमान घाव करता है (श्लोक 10-17)।
2. प्रभुत्व आत्मा को अन्धा कर सकता है। यति सिंहासन इसलिए अस्वीकार करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि वह व्यक्ति से आत्म-साक्षात्कार छीन सकता है। अध्याय एक चेतावनी से आरम्भ होता है कि पार्थिव शक्ति, अनियन्त्रित, आत्मा के लिए एक संकट है (श्लोक 2)।
3. अतृप्त कामना भोग से सन्तुष्ट नहीं हो सकती। सम्पूर्ण पृथ्वी के सम्राट के रूप में सहस्र वर्ष बिताकर भी ययाति अतृप्त ही रहे; यदु का यह दावा कि जिसने भोग नहीं चखा वह मुक्त नहीं हो सकता, अन्ततः स्वयं उसके पिता की नियति से ही खण्डित हो जाता है (श्लोक 36-40, 51)।
4. सच्ची सेवा आवश्यकता का पूर्वानुमान करती है। पूरु की चार प्रकार के पुत्रों पर शिक्षा — श्रेष्ठ जो कहे जाने से पहले करता है — समस्त प्रेममयी सेवा के लिए एक मानक स्थापित करती है: याचना से पहले, श्रद्धा एवं प्रेम से देना (श्लोक 44)।

5. निःस्वार्थ प्रेम स्वयं अपना पुरस्कार है। जहाँ बड़े पुत्र यौवन से चिपके रहते एवं इनकार करते हैं, वहाँ पूरु मुक्त भाव से अपना यौवन देते एवं पिता की वृद्धावस्था लेते हैं। उनका निःस्वार्थ भाव, अगले अध्याय में, राज्य से मुकुटित होगा — क्योंकि देने वाला प्रेम अन्ततः कभी हारता नहीं (श्लोक 42-44)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस घटनाओं-भरे, अत्यन्त मानवीय अध्याय के हृदय में एक ही देदीप्यमान कर्म खड़ा है: एक युवक जो सहर्ष अपना यौवन देकर अपने पिता से वृद्धावस्था का भार उठा लेता है। इसके चारों ओर वह सब घूमता है जो हमें बाँधे रखता है — देवयानी एवं शर्मिष्ठा का अभिमान, वह काम जो एक महान् राजा तक को दास बना देता है, वह कामना जिसे ययाति स्वयं स्वीकार करते हैं कि खिलाने से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकती। भागवत यह दिखाने से नहीं हिचकता कि ये शक्तियाँ श्रेष्ठजनों को भी कैसे उलझा देती हैं; ययाति कोई खलनायक नहीं, बल्कि अपनी ही लालसाओं के जाल में फँसा एक अच्छा मनुष्य है। और इस उलझन में पूरु प्रवेश करते हैं, जिनका प्रेम कुछ नहीं माँगता और सब कुछ देता है। चार प्रकार के पुत्रों पर उनके शब्द वास्तव में चार प्रकार के भक्तों पर शब्द हैं, और सर्वोच्च — जो कहे जाने से पहले इच्छित कर देता है — शुद्ध भगवद्-भक्ति की ही प्रतिमा है। हम अपना जीवन, ययाति के समान, इस आशा में बिताते हैं कि एक और भोग अन्ततः हमारी अशान्ति को शान्त कर देगा, और वह कभी नहीं करता। किन्तु मार्ग पूरु द्वारा दिखाया जाता है: ग्रसना छोड़कर देना आरम्भ करना, आवश्यकता से लेने के बजाय प्रेम से सेवा करना। अध्याय कोमलता से प्रतिज्ञा करता है कि जिस कामना को हम भोग से कभी सन्तुष्ट नहीं कर सकते, उसे हम निःस्वार्थ प्रेम से पार कर सकते हैं — और कि ऐसा प्रेम, हमें दरिद्र करने के बजाय, सबसे सच्चा धन है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, पूरु की भावना में, सर्वोच्च प्रकार की सेवा का अभ्यास करें — वह सेवा जो माँगे जाने से पहले देती है। अपने घर या समुदाय में एक ऐसी आवश्यकता खोजें जिसे अभी किसी ने कहा नहीं, और उसे चुपचाप पूर्ण करें, न धन्यवाद न पुरस्कार की अपेक्षा करते हुए, सबमें वास करने वाले भगवान् को एक अर्पण के रूप में। और जहाँ आप ययाति की अशान्ति का खिंचाव अनुभव करें — एक और सुख, एक और भोग की लालसा — रुकें और उस तड़प को कोमलता से भगवान् को सौंप दें, दोहराते हुए, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय,” यह स्मरण करते हुए कि कामना खिलाने से कभी शान्त नहीं होती बल्कि केवल समर्पण से। पूर्वानुमानित, निःस्वार्थ प्रेम का एक कार्य आज आपकी पूजा बने, यह विश्वास करते हुए कि जो शान्ति कोई भोग न दे सका वह देने के आनन्द से आएगी।

उपसंहार

नवम स्कन्ध का अठारहवाँ अध्याय हमें राजा ययाति की कथा देता है — देवयानी एवं शर्मिष्ठा से उनके विवाह, शुक्राचार्य द्वारा उन पर रखा असमय वृद्धावस्था का शाप, और उस वृद्धावस्था को अपने पुत्र के यौवन से बदलना। चार पुत्रों ने इनकार किया; केवल पूरु ने, शुद्ध भक्ति से, सहर्ष अपने पिता की वृद्धावस्था अपना ली, एक सच्चे पुत्र के प्रेम का माप सिखाते हुए। और जब सम्पूर्ण पृथ्वी के सिंहासन पर पुनः यौवन के साथ बैठे ययाति सहस्र वर्षों के भोग के बाद भी तृप्ति न पा सके, तब अध्याय की वास्तविक शिक्षा प्रकट हो जाती है: कोई भी भोग कामना को बुझा नहीं सकता, किन्तु जो प्रेम कुछ नहीं माँगता, उसके पास पहले से ही सब कुछ है।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

सन्दर्भ एवं आभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, नवम स्कन्ध, अष्टादश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवत विज्ञम · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-9-chapter-18-king-yayati-regains-his-youth-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट